डॉ. अंगदकुमार सिंह

गद्य की कसौटी और आचार्य शुक्ल

सार संक्षेप :

लेखक कितना प्रतिभाशाली या विद्वान है उसे परखने के लिए निबन्ध रूपी कसौटी पर कसकर जाँचा जाता है। यदि उसके निबन्ध इस मानक पर खरे उतरते हैं तो वह लेखक महान या श्रेष्ठ माना जाता है। परिष्कृत और प्रौढ़ता को प्राप्त रचना को निबन्ध कहते हैं। शुक्ल जी ने ऐसे निबन्धों का प्रणयन किया है जिनमें मौलिक विचारों की सम्पन्नता है तो उनके द्वारा चयनित वाक्य सुविचारित, सुचिन्तित और व्यंजनापूर्ण भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल किसी विषय का चिन्तन पूरी तरह उसमें डूबकर अपने ढंग से करते हैं और कुछ नया छानकर पाठक–वर्ग के सामने प्रस्तुत कर उसके मन और मस्तिष्क को मोहक बना लेते हैं। आचार्य शुक्ल हिन्दी के महान निबन्धकार माने जाते हैं। उनकी भाषा विषय के अनुरूप प्रौढ़, गम्भीरता एवं साहित्यिकता का पुट लिए हुए, परिष्कृत और संयत है तो उसमें भावप्रकाशन की अद्भुत क्षमता भी। उनका मत है धन–लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य, मनुष्य न रहकर कुछ और हो जाता है, उसकी सभी वृत्तियाँ धनावेश के कारण कुण्ठित हो जाती हैं। गद्य की कसौटी पर सर्वतोभावेन सिद्ध उतरने के बाद वे एक प्रशस्त गद्यकार थे। प्रतीत होता है कि आचार्य दण्डी द्वारा प्रतिपादित सूत्र 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के अनुगामी भी। आ. रामचन्द्र शुक्ल जी स्वयं में गद्य की विशिष्ट कसौटी थे, उनके द्वारा प्रतिमानीकृत गद्य को अन्य की गद्य–कसौटी पर चढ़ाकर परखने की आवश्यकता नहीं है। पतंजलि के 'महाभाष्य' की तरह आ. शुक्ल के सभी सूत्र–बद्ध गद्य–वाक्य अप्रमेय और अद्वितीय हैं। यह क्या कम है कि आचार्य शुक्ल के प्रत्येक गद्य–वाक्य प्रश्न बनते गये हैं। गद्य–भाषा के पण्डित आ. शुक्ल को किसी कसौटी पर चढ़ाना उनके स्थापित व्यक्तित्व का निरादर है।

बीज शब्द : गद्य साहित्य, गद्य कसौटी, देशप्रेम, भारतीय संस्कृत, निबन्धकार, भाषाशैली|

साहित्य समीक्षा :

यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।[1] कसौटी का अर्थ लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित और आचार्य रामचन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवाँ संस्करण, 2004 में पृष्ठ 167 पर दो तरह का भाष्य दिया है– पहला, एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़कर सोने की उत्तमता परखते हैं तो दूसरा, परख की कोई ऐसी बात या तत्त्व जिसके आधार पर किसी बात के ठीक या किसी काम के पूरे होने की जाँच हो। इसे परख या जाँच करना भी कहते हैं। अर्थात् गद्य की जिससे जाँच या परख की जाय उसे 'निबन्ध' के नाम से जानते हैं। लेखक कितना

प्रतिभाशाली या विद्वान है उसे परखने के लिए निबन्ध रूपी कसौटी पर कसकर जाँचा जाता है। यदि उसके निबन्ध इस मानक पर खरे उतरते हैं तो वह लेखक महान या श्रेष्ठ माना जाता है।

निबन्ध का सामान्य अर्थ बाँधने से है। निबन्ध का प्राचीन समय में लिखे हुए भोजपत्रों को सहेजकर तथा सँवारकर बाँधने या सीने की प्रक्रिया को कहा जाता था। पर, समय के साथ इसका अर्थ संकोच हो जाने के कारण यह सिर्फ़ साहित्यिक कृतियों के लिए प्रयोग होने लगा। परिष्कृत और प्रौढ़ता को प्राप्त रचना को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध का शब्दपरक अर्थ सूत्रों में बधी हुई रचना है तो लेखक अपनी भावना के साथ विचार को गुथकर एक साथ संकलित कर इसमें प्रस्तुत भी करता है। फ्रेंचभाषा के महान विद्वान और साहित्यकार मानतेन ने 'आत्माभिव्यक्ति' को निबन्ध माना है तो आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी का मानना है कि, ''किसी विशिष्ट विषय या उसकी शाखा के सम्बन्ध में एक मध्यम आकार की गद्य–रचना को निबन्ध कहते हैं, जो अपने मूल में अपूर्ण–सी होती थी, किन्तु जो अब कथ्य में सीमित, परन्तु शैली में समृद्ध होती है।'' डब्ल्यू. एच. हडसन की मान्यता है कि, ''वास्तविक निबन्ध प्रकृततः वैयक्तिक होता है। प्रबन्ध वस्तुपरक हो सकता है, किन्तु निबन्ध व्यक्ति–प्रधान होता है।''[2] तो बाबू गुलाब राय ने निबन्ध के बारे में अपना मत देते हुए स्पष्ट किया है कि, ''निबन्ध उस गद्य–रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता के साथ ही आवश्यक संगति और सुसम्बद्धता के साथ किया गया हो।''[3] जयनाथ नलिन का मानना है कि, ''किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निश्चल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाश ही निबन्ध है।''[4] तो डॉ.भगीरथ मिश्र ने कहा है कि, ''निबन्ध वह गद्य–रचना है जिसमें लेखक किसी विषय पर स्वच्छन्दता पूर्वक परन्तु एक विशेष सौष्ठव, संहिति, सजीवता और व्यक्तिगत प्रकाशन के साथ अनेक भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।''[5] लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने कहा है कि, ''निबन्ध–रचना केवल खड़ीबोली की विशेषता है। खड़ीबोली गद्य के लिए उन्नीसवीं शताब्दी और उसमें भी निबन्ध रचना की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से 'निबन्ध' हिन्दी साहित्य का नितान्त आधुनिक रूप है।''[6]

हिन्दी साहित्य की जैसे अन्य गद्य–विधाएँ उन्नीसवीं शताब्दी अर्थात् भारतेन्दु युग की देन है वैसे ही निबन्ध भी। उन्नीसवीं शताब्दी में उदारवादी विचारधारा जब अपना पैर विश्व में फैला रही थी तो भारत इससे कैसे अपने को दूर रख सकता था, बच सकता था? यही विचारधारा विशेषकर निबन्धों का आश्रय लेकर जब हिन्दुस्तान में आयी तो तत्कालीन समय में विचारों की स्वतन्त्रता ही मनुष्य की प्राथमिक वचनबद्धता थी। प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन के पश्चात् भारतेन्दु अपनी लेखनी की धार को तेज करने लगे और अपनी भूमिका बख़ूबी साहित्य के माध्यम से निभाने लगे। स्वतन्त्रता की चेतना और अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति का प्रभाव भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखक–साहित्य में स्पष्ट दिखायी देता है। भारतेन्दु जी के साहित्य में अंग्रेज़ी सत्ता के

विरोध के स्वर स्पष्ट दिखायी देता है। हरिश्चन्द जी ने अपने निबन्धों का विषय इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति–वर्णन एवं व्यंग्य–विनोद से ग्रहण किये। वे सामाजिक निबन्धों में सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते हैं तो राजनीतिक निबन्धों में अंग्रेज़ी राज पर। भारतेन्दु–मण्डल के अन्य निबन्धकारों में, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चैधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास आदि आते हैं। इस युग के निबन्धकारों में न विषय का अकाल था न विविधता की। ये सभी पत्रकारों के गुणों से युक्त थे इसलिए इनकी भाषा में हास्य–व्यंग्य एवं मनोरंजन की प्रधानता थी तथा राजनीतिक विषमता एवं सामाजिक कुरीतियों को तटस्थता के साथ दूर करने की कोशिश भी। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग के निबन्धकारों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, ''जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबन्ध–रचना में मिली, उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। X X X भारतेन्दु युग की गद्यशैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निदर्शन निबन्धों में ही मिलते हैं।''

हिन्दी निबन्ध का दूसरा चरण 'सरस्वती' पत्रिका के यशस्वी सम्पादक और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से शुरू हुआ। द्विवेदी युग में विचारप्रधान निबन्धों का सृजन हुआ तो भाषा भी प्रौढ़ता को प्राप्त हुई, साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं को लेखकों द्वारा प्रश्रय दिया गया तो हास्य–व्यंग्य में गम्भीरता को भी अपनाया गया। इतना ही नहीं इस युग के निबन्धकारों ने भावात्मक, विचारात्मक एवं शोधपरक शैली को अपनी लेखनी का आधार बनाया। द्विवेदीयुग के निबन्धकारों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, गोविन्दनारायण मिश्र, बाबू श्यामसुन्दर दास, अध्यापक पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', मिश्रबन्धु, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी निबन्ध का तृतीय चरण हिन्दी के महान इतिहासवेत्ता, आलोचना के हस्ताक्षर, प्रमुख कहानी लेखक और युग–विधायक निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध–क्षेत्र में पदार्पण के साथ शुरू होता है। जिनके निबन्ध–क्षेत्र में प्रवेश करते ही हिन्दी–निबन्धाकाश का सूर्य मानो अपनी सभी रश्मियों को बिखेते हुए अँधेरे को काटकर सम्पूर्ण पाठकवर्ग को नयी रोशनी से भर दिया। दूसरे शब्दों में शुक्ल युग ही है जिसमें हिन्दी निबन्ध अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ सोलहों कलाओं के साथ। आचार्य शुक्ल जी ने निबन्ध के जितने भी गुण हो सकते हैं सभी को सन्तुलित कर आत्मसात् करते हुए निबन्ध–लेखन में भाव एवं विचार अर्थात् भाव और बुद्धि का समन्वय किया। अपने से पहले के निबन्ध और निबन्धकारों पर बख़ूबी चिन्तन, मनन करने के फलस्वरूप निष्कर्ष देते हुए शुक्ल जी ने कहा कि ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है''[7] तथा अपने इसी विचार का जीवनभर पालन करते रहे। आचार्य जी के निबन्ध दो प्रकार के मिलते हैं– पहला, साहित्यिक समीक्षा–सम्बन्धी तो दूसरा, मनोविकार–सम्बन्धी। साहित्यिक समीक्षा के अन्तर्गत तुलसी का भक्तिमार्ग, कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्य आदि निबन्ध आता है तो उत्साह, लज्जा और

ग्लानि, श्रद्धा–भक्ति, क्रोध आदि निबन्ध मनोविकार के अन्तर्गत। शुक्ल जी अपने निबन्धों का सृजन करते समय हमेशा अपनी कही हुई बात का ध्यान रखते और प्रयास करते कि उसका भली–भाँति पालन हो सके। वे अपने निबन्ध–संग्रह 'चिन्तामणि' भाग एक के निवेदन नामक भूमिका में लिखते हैं कि, ''इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर।''[8] शुक्ल जी के इस वाक्य का अभिप्राय यह कि उनके जो निबन्ध हैं उनमें हृदय और बुद्धि का सन्तुलित समन्वय तो है ही, फिर भी उनके कुछ निबन्ध विचार की प्रधानता से भी पूर्ण हैं। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास सही अर्थ में आचार्य शुक्ल के निबन्धों में ही हुआ है। उन्होंने इस बात को स्वयं स्वीकार करते हुए कहा है कि, ''शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम उत्कर्ष वहीं होता है जहाँ एक–एक पैराग्राफ़ में विचार दबा–दबा कर ठूँसे गये हैं और एक–एक वाक्य इसी सुसम्बद्ध विचार–खण्ड के लिए हो।''

शुक्ल जी ने ऐसे निबन्धों का प्रणयन किया है जिनमें मौलिक विचारों की सम्पन्नता है तो उनके द्वारा चयनित वाक्य सुविचारित, सुचिन्तित और व्यंजनापूर्ण भी। आचार्य जी के निबन्धों में विचारों की सुसम्बद्धता के बख़ूबी दर्शन किसी भी सहृदय पाठक को आसानी से हो जाते हैं। इसका एक नमूना– ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्यभाव बुद्धि के साथ–साथ श्रद्धाभाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षातकार की वासना हो तब हृदय में भक्ति का का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।''[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल किसी विषय का चिन्तन पूरी तरह उसमें डूबकर अपने ढंग से करते हैं और कुछ नया छानकर पाठक–वर्ग के सामने प्रस्तुत कर उसके मन और मस्तिष्क को मोहक बना लेते हैं। वे जब मनोविकार पर अपनी लेखनी चला रहे होते हैं तो नवीन दृष्टि से विचार कर उसका सूक्ष्म ढंग से विश्लेषण करते हैं। काव्य की समीक्षा करते समय भी उनका मौलिक रूप ही दिखायी देता है। 'कविता क्या है' नामक निबन्ध में काव्य को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि, ''हृदय की इसी मुक्ति–साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द–विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।''[10] शुक्ल जी भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र का अनुशीलन करने वाले विद्वान हैं तो पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र का भी। सभी पूर्वापर साहित्यों का भली–भाँति अध्ययन करने के कारण उनमें समीक्षा की मौलिक और नयी दृष्टि विकसित हुई जो आचार्य को नये विचारों से तरोताज़ा कर दिया तथा वे नवीन स्थापनाओं को साहित्य में पिरोने लगे।

भारत के कुलीन शुक्ल परिवार में जन्म लेने वाले तथा भारतीय संस्कारों में पले–बढ़े होने के कारण शुक्ल जी भारतीय संस्कृति और यहाँ की प्रकृति–प्रेम को छोड़ नहीं पाये। इसलिए उनके निबन्धों में प्रकृति–प्रेम के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। ऐसे स्थलों के बारे में वर्णन करते हुए वे रोमांचित होकर कह उठते हैं कि, ''आँखे खोलकर देखो खेत लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच कैसे बह रहे हैं, टेसू के फूल से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, चौपायों के झुण्ड चरते हैं, चरवाहे तान लड़ा रहे हैं और अमराइयों के बीच गाँव झाँक रहे

हैं।'' इतना ही नहीं वे अपने निबन्धों में देशप्रेम और मानवप्रेम का भी अनेक स्थलों पर संजीदगी के साथ प्रस्तुतीकरण करते हैं उसमें एकदम डूबकर। इसलिए उनका प्रेम दिखावा नहीं बल्कि उसमें हृदय का सच्चाभाव प्रकट हुआ है उन्हीं के शब्दों में– ''यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाहभरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आँसू बहायेगा। जो यह नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है X X X वे यदि दस बने–ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बताकर देशप्रेम का दावा करे तो उनसे पूछना चाहिए कि, ''भाइयों! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?''[11]

आचार्य शुक्ल हिन्दी के महान निबन्धकार माने जाते हैं। उनकी भाषा विषय के अनुरूप प्रौढ़, गम्भीरता एवं साहित्यिकता का पुट लिए हुए, परिष्कृत और संयत है तो उसमें भावप्रकाशन की अद्भुत क्षमता भी। शुक्ल जी की भाषा का शब्दभाण्डार बहुत समृद्ध है। इसका कारण यह है कि वे किसी भी भाषा के शब्दों को अपनाने से ग़ुरेज़ नहीं करते, बल्कि हिन्दी शब्दों के साथ ही तत्सम शब्दों (जैसे–मुक्ताभास, हिमबिन्दु मण्डित, मरकताभ–शाद्वल–जाल, सीकर–निहारिता, गर्त, सहृदय आदि) को अपनाया तो देशज शब्दों (यथा–धड़क, ढब, चिड़चिड़ाहट, तड़तड़ाहट, तिलमिलाना, कड़क, डाटना–डपटना, लूटना–पाटना, अटकल–पच्चू, लुकता–छिपता इत्यादि) को भी, अरबी–फ़ारसी के शब्दों (जैसे–मौज़ूद, इशारा, अर्ज़ी, पेश, मंज़ूर, तादात, साफ़, अलवत, गिरफ़्तार, दीवार, बला, हाज़िर, सफ़र, आदि) से मासूमियत और नये तरह से निबन्धों में जान डाली तो अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों (फ़ैशन, स्टेशन, कोट, हैट, कैप, इमेज़, सिम्बालिकस्पेक्ट, पैंथरिज़्म इत्यादि) को अपनाकर अपनी भाषा का लोहा अंग्रेज़ो को मनवाया। संस्कृतनिष्ठ भाषा का एक खण्डांश–''जो केवल प्रफुल्ल–प्रसून–प्रसार के सौरभ–संचार, मकरन्द–लोलुप मधुप–गुंजार, कोकिल–कूति, निकुंज और शीतल सुख–स्पर्श–समीर इत्यादि की चर्चा किया करते हैं वे विषयी या भोगलिप्सु हैं।''[12] इतना ही नहीं वर्णन में सजीवता लाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग लेखकों द्वारा किया जाता जाता है। आचार्य शुक्ल ने भी प्रचलित अनेक मुहावरों और लोकोक्तियों का उपयोग अपने निबन्धों में किया है जैसे–घड़े पानी पड़ना, गड़ जाना आदि।

शुक्ल जी ने तत्कालीन समय में प्रचलित सभी प्रकार की शैलियों का भी प्रयोग अपने निबन्धों में किया है, कहीं आलोचनात्मक शैली का प्रयोग मिलता है तो कहीं गवेषणात्मक शैली का, कहीं भावनात्मक शैली में निबन्ध का प्रणयन किया तो कहीं हास्य–व्यंग्य शैली में, समास शैली को भी कवि ने प्रश्रय दिया तो संस्कृत बहुल अलंकृत शैली को भी। आलोचनात्मक शैली का उपयोग कृतिकार द्वारा शास्त्रीय समीक्षा से सम्बन्धित निबन्धों के लेखन में हुआ है, इस शैली में चिन्तन की प्रधानता के साथ तर्क और विश्लेषण का सुव्यवस्थित रूप देकर प्रयोग किया गया है। यथा–''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।''[13] सैद्धान्तिक समीक्षा जहाँ शुक्ल जी कर रहे होते वहाँ वे गवेषणत्मक शैली का

प्रयोग करते हैं, क्योंकि इस शैली में विषय सम्पादन की अद्भुत क्षमता होती है तथा सिद्धान्त को भली–भाँति आसानी से पाठक वर्ग को समझाया जा सकता है। इस शैली का प्रयोग करते समय वाक्य लम्बे तथा संस्कृतयुक्त हो गये हैं– ''व्यक्ति–सम्बन्धहीन सिद्धान्त–मार्ग–निश्चयात्मिकता बुद्धि को चाहे व्यक्त हों, पर प्रवर्तक मन को अव्यक्त रहते हैं। वे मनोरंजनकारी तभी लगते हैं, जब किसी व्यक्ति के जीवन–क्रम के रूप में देखे जाते हैं।''[14] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में भावना को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उनके निबन्धों में हृदय और बुद्धि का समन्वय हुआ है तो चिन्तन की गम्भीरता के साथ ही भावनात्मकता का समावेश भी। गद्यकार का जहाँ कहीं हृदय अधिक प्रभावी होकर मस्तिष्क को झकझोरा है वहाँ वह भावना में बह चला है और उसकी शैली भावना से पूर्ण होकर भावात्मक हो गयी है। ऐसे स्थलों पर वाक्य आलंकारिकता को प्राप्तकर प्रश्नांकित होकर हृदय पक्ष को बेध देता है। जैसे–''खर–दूषण की राक्षसी सेना कोलाहल करती आ रही है। राम कुछ मुस्कराकर एक बार प्रेम–भरी दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं, फिर वीरदर्प से राक्षसों की ओर दृष्टि फेंककर अपना धनुष चढ़ाते हैं। उस वीरदर्प में कितनी उमंग, कितना उत्साह, कितना माधुर्य रहा होगा!''[15] हास्य–व्यंग्य प्रधान शैली का उपयोग भी लेखक ने यथा स्थान किया है। शुक्ल जी ने जो हास्य–व्यंग्य किया है वह समाज में मौज़ूद विसंगतियों को लेकर। उनके हास्य–व्यंग्य इतने मर्यादित और चुटेले होते हैं कि समाज का कोई भी व्यक्ति उनसे चिढ़ता नहीं और अपने को बचा भी नहीं पाता, तथा कुछ अच्छा सोचने को मज़बूर हो जाता है–''मोटे आदमियों तुम जरा से दुबले हो जाते, अपने अन्देशे से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर माँस चढ़ जाता।'' धन–लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य, मनुष्य न रहकर कुछ और हो जाता है, उसकी सभी वृत्तियाँ धनावेश के कारण कुण्ठित हो जाती हैं। ऐसे मानवीय मूल्यों से हीन लोभी व्यक्तियों के दमन की प्रवृत्ति पर चुटेले शब्दों में व्यंग्य करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि, ''लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय–निग्रह, तुम्हारी मानापमान–समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है; तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्ञता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हार अन्याय विग्रहणीय है। तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है!!''[16] आचार्य जी ने समास शैली का प्रयोग विचारों की सघनता के लिए किया तो कम शब्दों में अधिक बात कहने के लिए भी। समास शैली को दूसरे शब्दों में सूत्र शैली भी कहा जाता है। इस शैली के कुछ उदाहरण– ''यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण।''[17] ''बैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है।'' ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।''[18] शुक्ल जी निबन्ध के प्रणयन में न चाहते हुए भी संस्कृत बहुल अलंकृत शैली का प्रयोग किया है जो उनकी बुद्धिमत्ता और विद्वता का परिचय देती हैं। इस शैली का उपयोग वे बहुत ही कम किये हैं जो इस बात का परिचायक है कि आचार्य जी आलंकारिक भाषा का भी सृजन करने में सिद्धस्त हैं। उनके निबन्ध 'कविता क्या है' की एक बानगी–''–''जो केवल प्रफुल्ल–प्रसून–प्रसार के सौरभ–संचार, मकरन्द–लोलुप मधुप–गुंजार, कोकिल–कूजित, निकुंज और शीतल सुख–स्पर्श–समीर इत्यादि की चर्चा किया करते हैं वे विषयी या भोगलिप्सु हैं।''[19]

निष्कर्ष :

आचार्य शुक्ल की निबन्ध–यात्रा पर विहंगम दृष्टिपात के पश्चात् यह निष्कर्ष साक्षीकृत होता है कि वे एक समर्थ निबन्धकार थे। गद्य की कसौटी पर सर्वतोभावेन सिद्ध उतरने के बाद वे एक प्रशस्त गद्यकार थे। प्रतीत होता है कि आचार्य दण्डी द्वारा प्रतिपादित सूत्र 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के अनुगामी भी। आचार्य दण्डी की इसी गद्य–सूत्र–कसौटी पर आचार्य शुक्ल ने अपनी अर्थगर्भी टिप्पणी दी है कि, ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।'' यह विशेष उल्लेखनीय और ध्यातव्य बात है कि आ. रामचन्द्र शुक्ल जी स्वयं में गद्य की विशिष्ट कसौटी थे, उनके द्वारा प्रतिमानीकृत गद्य को अन्य की गद्य–कसौटी पर चढ़ाकर परखने की आवश्यकता नहीं है। पतंजलि के 'महाभाष्य' की तरह आ. शुक्ल के सभी सूत्र–बद्ध गद्य–वाक्य अप्रमेय और अद्वितीय हैं। यह क्या कम है कि आचार्य शुक्ल के प्रत्येक गद्य–वाक्य प्रश्न बनते गये हैं। गद्य–भाषा के पण्डित आ. शुक्ल को किसी कसौटी पर चढ़ाना उनके स्थापित व्यक्तित्व का निरादर है। कसौटी को कसौटी पर नहीं चढ़ाया जाता।

सन्दर्भ:

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 276, प्रथम पेपर बैक संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2058
2. तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार, भूमिका, पृष्ठ 2, प्रथम संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007
3. राय, बाबू गुलाब, काव्य के रूप, पृष्ठ 236
4. नलिन, डॉ. जयनाथ, हिन्दी निबन्धकार, पृष्ठ 10
5. मिश्र, भगीरथ, भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ 71
6. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 148
7. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 276, प्रथम पेपर बैक संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2058
8. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, चिन्तामणि भाग–1, निवेदन, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1948
9. तिवारी, आचार्य रामचन्द्र, सं. , श्रेष्ठ निबन्ध, श्रद्धा–भक्ति, पृष्ठ, 66, द्वितीय संस्करण, 2001
10. वही, कविता क्या है, पृष्ठ 103
11. वही, लोभ और प्रीति, पृष्ठ, 88, द्वितीय संस्करण, 2001
12. वही, कविता क्या है, पृष्ठ 109
13. वही, पृष्ठ 103

14. वही, श्रद्धा–भक्ति, पृष्ठ 67
15. वही, लोभ और प्रीति, पृष्ठ, 98
16. वही, पृष्ठ, 94
17. वही, श्रद्धा–भक्ति, पृष्ठ, 56, द्वितीय संस्करण, 2001
18. वही , श्रद्धा–भक्ति, पृष्ठ, 66
19. वही, कविता क्या है, पृष्ठ 109

असिस्टेण्ट प्रोफ़सर: हिन्दी, जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँसगाँव गोरखपुर (उ.प्र.), भारत – 273403
मो.नं.: 7460856206, ई–मेल: anagadkumarsingh01@gmail.com